[2015] 4 एस. सी. आर 841

महमूद उल रहमान

बनाम

ख़ाज़िर मोहम्मद टुंडा एवं अन्य

(आपराधिक अपील सं. 1347/2010 आदि)

31 मार्च, 2015

[कुरियन जोसेफ तथा आदर्श कुमार गोयल, न्यायमूर्ति]

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 190(1)(a), 204 तथा 482 - धारा 190(1)(a) के अंतर्गत अपराध का संज्ञान लेने के पश्चात प्रक्रिया जारी करना - धारा 482 के अंतर्गत कार्यवाही निरस्त करने हेतु आवेदन - उच्च न्यायालय द्वारा अस्वीकृत - अपील में, अभिनिर्धारित: मजिस्ट्रेट धारा 204 के अंतर्गत प्रक्रिया जारी करते समय तभी आगे बढ़ सकता है, जब वह इस बात से संतुष्ट हो कि शिकायत में किए गए आरोप किसी अपराध का गठन करते हैं तथा अभिलेख पर दर्ज कथनों के साथ विचार करने पर प्रथम दृष्टया अभियुक्त को न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी बनाते हैं - मजिस्ट्रेट द्वारा मस्तिष्क का प्रयोग (application of mind) उसके संतोष के प्रकटीकरण से सर्वोत्तम रूप में प्रदर्शित होता है - यदि ऐसा कोई संकेत नहीं है, तो धारा 190/204 के अंतर्गत कार्यवाही के लिए, उच्च न्यायालय को आपराधिक न्यायालय की शक्तियों के दुरुपयोग को रोकने हेतु अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करना अनिवार्य है - वर्तमान प्रकरण में, मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 500, रणबीर दंड संहिता के अंतर्गत अपराध का संज्ञान लेने तथा प्रक्रिया जारी करने में मस्तिष्क के प्रयोग का कोई संकेत नहीं है - मामला पुनः विचार हेतु मजिस्ट्रेट को प्रत्यावर्तित किया जाता है - रणबीर दंड संहिता, 1932 - धारा 500।

अपीलों को स्वीकार करते हुए तथा मामले को न्यायिक मजिस्ट्रेट को प्रत्यावर्तित करते हुए, न्यायालय।

अभिनिर्धारित: 1. शिकायत पर अपराध का संज्ञान अभियुक्त के विरुद्ध प्रक्रिया जारी करने के उद्देश्य से लिया जाता है। चूँकि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें उन तथ्यों का न्यायिक संज्ञान लिया जाता है जो किसी अपराध का गठन करते हैं, अतः यह आवश्यक है कि इस बात पर मस्तिष्क का प्रयोग किया जाए कि क्या शिकायत में लगाए गए आरोप, अभिलेख पर दर्ज कथनों अथवा उस पर की गई जांच के साथ विचार करने पर, विधि का उल्लंघन सिद्ध करते हैं, जिससे किसी व्यक्ति को आपराधिक न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के

लिए बुलाया जा सके। यह कोई यांत्रिक प्रक्रिया या सामान्य कार्यवाही नहीं है। (पैरा 21) [856-F-H]

पेप्सी फूड्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट एवं अन्य **(1998) 5 SCC 749: 1997 (5) अनुपूरक एससीआर 12**; *दर्शन सिंह राम किशन बनाम महाराष्ट्र राज्य* **(1971) 2 SCC 654: 1972 (1) एससीआर 571**; *एम्परर बनाम सोरिन्द्र मोहन चक्रबर्ती* **(1910) I.L.R. खंड XXXVII, कलकत्ता 412**; *श्रीमती नागव्वा बनाम वेरन्ना शिवलिंगप्पा कंजली एवं अन्य* **(1976) 3 SCC 736: 1976 (0) अनुपूरक एससीआर 123**; *किशुन सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य* **(1993) 2 SCC 16: 1993 (1) एससीआर 31**; *पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य बनाम मोहम्मद खालिद एवं अन्य* **(1995) 1 SCC 684: 1994 (6) अनुपूरक एससीआर 16**; *कांति भद्र शाह एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य* **(2000) 1 SCC 722: 2000 (1) एससीआर 27**; *उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाम मोहन मीकिन्स लिमिटेड एवं अन्य* **(2000) 3 SCC 745: 2000 (2) एससीआर 566**; *उप मुख्य नियंत्रक, आयात एवं निर्यात बनाम रोशन लाल अग्रवाल एवं अन्य* **(2003) 4 SCC 139: 2003 (2) एससीआर 621**; *जगदीश राम बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य* **2004 (4) SCC 432: 2004 (2) एससीआर 846**; *एस.के. सिन्हा, मुख्य प्रवर्तन अधिकारी बनाम वीडियोकॉन इंटरनेशनल लिमिटेड एवं अन्य* **(2008) 2 SCC 492: 2008 (2) एससीआर 36**; *उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाम डॉ. भूपेन्द्र कुमार मोदी एवं अन्य* **(2009) 2 SCC 147: 2008 (17) एससीआर 349**; *भूषण कुमार एवं अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) एवं अन्य* **(2012) 5 SCC 424: 2012 (2) एससीआर 696** - पर भरोसा किया गया।

2. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 190(1)(a) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट द्वारा उठाए गए कदम तथा उसके पश्चात धारा 204 के अंतर्गत की गई कार्यवाही से यह स्पष्ट परिलक्षित होना चाहिए कि मजिस्ट्रेट ने तथ्यों एवं अभिलेख पर दर्ज कथनों पर अपना मस्तिष्क लगाया है और वह इस बात से संतुष्ट है कि मामले में आगे कार्यवाही करने हेतु पर्याप्त आधार है, जिससे उस व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध विधि के उल्लंघन का आरोप है, न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा जा सके। मजिस्ट्रेट को प्रत्येक प्रस्तुत की गई शिकायत पर संज्ञान लेते समय डाकघर (पोस्ट ऑफिस) की भाँति कार्य नहीं करना चाहिए और न ही सामान्य रूप से प्रक्रिया जारी करनी चाहिए। मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में यह पर्याप्त रूप से इंगित होना चाहिए कि वह इस बात से संतुष्ट है कि शिकायत में लगाए गए आरोप किसी अपराध का गठन करते हैं तथा अभिलेख पर दर्ज कथनों और धारा 202 दण्ड प्रक्रिया

संहिता के अंतर्गत की गई जाँच या अन्वेषण प्रतिवेदन (यदि कोई हो) के साथ विचार करने पर अभियुक्त आपराधिक न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी है और उसके विरुद्ध धारा 204 के अंतर्गत कार्यवाही प्रारम्भ करने हेतु, उपस्थिति के लिए प्रक्रिया जारी करने का आधार विद्यमान है। मस्तिष्क के प्रयोग का सर्वोत्तम प्रदर्शन संतोष के प्रकटीकरण से होता है। यदि ऐसे किसी प्रकरण में, जहाँ मजिस्ट्रेट धारा 190/204 के अंतर्गत कार्यवाही करता है, इस प्रकार का कोई संकेत नहीं मिलता है, तो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक न्यायालय की शक्तियों के दुरुपयोग को रोकने के लिए बाध्य है। आपराधिक न्यायालय में अभियुक्त के रूप में उपस्थित होने के लिए बुलाया जाना एक गंभीर विषय है, जो व्यक्ति की गरिमा, आत्मसम्मान एवं समाज में उसकी छवि को प्रभावित करता है। अतः आपराधिक न्यायालय की प्रक्रिया को उत्पीड़न के साधन के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जाना चाहिए। (पैरा 23) [857-D-E, G-H; 858-A-D]

3. वर्तमान मामले में, अपीलकर्ताओं के विरुद्ध संज्ञान लेने तथा प्रक्रिया जारी करने में मजिस्ट्रेट द्वारा मस्तिष्क के प्रयोग का कोई संकेत नहीं है। मस्तिष्क के प्रयोग का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यद्यपि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 190/204 के चरण पर औपचारिक, वक्तव्ययुक्त अथवा कारणयुक्त आदेश आवश्यक नहीं है, तथापि यह आवश्यक है कि मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध के गठन करने वाले तथ्यों तथा धारा 200 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अभिलेखित कथनों पर मस्तिष्क के प्रयोग का पर्याप्त संकेत हो, ताकि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही की जा सके। निस्संदेह, उच्च न्यायालय का यह कहना सही है कि आरोपों की सत्यता साक्ष्य का विषय है। परंतु प्रश्न आरोपों की सत्यता का नहीं है, बल्कि यह है कि क्या प्रतिवादीगण आपराधिक न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी हैं या नहीं। इस संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में कोई संकेत नहीं है। अतः न्यायिक मजिस्ट्रेट तथा उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को निरस्त किया जाता है। मामला पुनः विचारार्थ मजिस्ट्रेट को प्रत्यावर्तित किया जाता है तथा विधि के अनुसार, यदि आवश्यक हो, तो आगे की कार्यवाही की जाए। (पैरा 24) [858-E-H; 859-A-B]

निर्णयजन्य विधि (उद्धृत प्रकरण)

1997 (5) अनुपूरक एससीआर 12	पैरा 8 में अवलंबित
1972 (1) एससीआर 571	पैरा 9 में अवलंबित
(1910) I.L.R. खंड XXXVII, कलकत्ता 412	पैरा 10 में अवलंबित

1976 (0) अनुपूरक एससीआर 123 **पैरा 11 में अवलंबित**

1993 (1) एससीआर 31 **पैरा 12 में अवलंबित**

1994 (6) अनुपूरक एससीआर 16 **पैरा 13 में अवलंबित**

2000 (1) एससीआर 27 **पैरा 14 में अवलंबित**

2000 (2) एससीआर 566 **पैरा 15 में अवलंबित**

2003 (2) एससीआर 621 **पैरा 16 में अवलंबित**

2004 (2) एससीआर 846 **पैरा 17 में अवलंबित**

2008 (2) एससीआर 36 **पैरा 18 में अवलंबित**

2008 (17) एससीआर 349 **पैरा 19 में अवलंबित**

2012 (2) एससीआर 696 **पैरा 20 में अवलंबित**

आपराधिक अपीलीय अधिकारिता: आपराधिक अपील सं. 1347/2010

जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय, श्रीनगर द्वारा याचिका सं. 23/2007 में दिनांक 18.05.2007 को पारित निर्णय एवं आदेश से।

सहित

आपराधिक अपील सं. 1348/2010

सोली जे. सोराबजी, विभा दत्ता माखिजा, शरद कुमार सिंहानिया, अमित कुमार सिंह, रश्मि सिंहानिया, प्रवीण चतुर्वेदी, अनिसुल हक, एस. जननी, दीपक गोयल, सुनंदो राहा, उपस्थित पक्षकारों के लिए अधिवक्तागण।

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा दिया गया:

कुरियन, न्यायमूर्ति। 1. दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे आगे 'दंड प्रक्रिया संहिता' कहा गया है) के अध्याय XIV की धारा 190 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान लिया जाता है। यह अध्याय "कार्यवाही के प्रारंभ हेतु आवश्यक शर्तें" से संबंधित है। धारा 190(1)(a) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत, मजिस्ट्रेट को ऐसे तथ्यों की शिकायत प्राप्त होने पर, जो किसी अपराध का गठन करते हैं, अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार है। दंड प्रक्रिया संहिता का अध्याय XV "मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायतें" से संबंधित आगे की प्रक्रिया का प्रावधान करता है। धारा 200 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत, मजिस्ट्रेट, शिकायत पर अपराध का संज्ञान लेते समय, शिकायतकर्ता तथा उपस्थित गवाहों (यदि कोई हों) का शपथ

पर परीक्षण करेगा और ऐसे परीक्षण का सार लिखित रूप में अभिलिखित किया जाएगा तथा उस पर शिकायतकर्ता, गवाहों और मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर होंगे। धारा 202 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत, यदि आवश्यक हो, तो मजिस्ट्रेट स्वयं मामले की जांच कर सकता है अथवा किसी सक्षम व्यक्ति द्वारा जांच कराए जाने का निर्देश दे सकता है, "इस उद्देश्य से कि यह निर्णय लिया जा सके कि कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं।" यदि धारा 200 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अभिलिखित कथनों तथा धारा 202 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत की गई जांच या अन्वेषण के परिणाम पर विचार करने के पश्चात मजिस्ट्रेट इस मत पर पहुँचता है कि आगे कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो उसे संक्षेप में कारण अभिलिखित करते हुए शिकायत को निरस्त कर देना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता का अध्याय XVI "मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाही का प्रारंभ" से संबंधित है। यदि अपराध का संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट के मत में आगे कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है, तो उसे धारा 204(1) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अभियुक्त की उपस्थिति हेतु प्रक्रिया जारी करनी होगी।

2. वर्तमान मामले में, हमें अभियुक्त के विरुद्ध प्रक्रिया जारी करने हेतु पर्याप्त आधार के संबंध में 'मजिस्ट्रेट की राय' के दायरे का निर्णय करना है। यह प्रश्न न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, श्रीनगर द्वारा दिनांक 03.04.2007 को पारित उस आदेश की पृष्ठभूमि में उत्पन्न हुआ है, जो वर्तमान वाद के प्रथम प्रतिवादी द्वारा रणबीर दंड संहिता, 1932 की धारा 500 [भारतीय दंड संहिता (45 of 1860) की धारा 500] के अंतर्गत दायर शिकायत पर पारित किया गया था। उक्त आदेश का प्रचालनात्मक (operative) भाग निम्नलिखित है:

> "शिकायत तथा अभिलेख पर दर्ज कथनों का अवलोकन किया गया। कार्यवाही के प्रथम चरण में, कथित अभियुक्तगण के विरुद्ध रु. 15,000/- की राशि के जमानती वारंट जारी किए जाएँ, तथा अभियुक्तगण को निर्देश दिया जाता है कि वे इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 22.04.2007 को उपस्थित होकर महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर दें।"

3. अपीलकर्ताओं के अनुसार, प्रथम प्रतिवादी द्वारा दायर की गई शिकायत किसी अपराध का गठन नहीं करती थी और इसलिए उन्हें मजिस्ट्रेट द्वारा आपराधिक कार्यवाही का सामना करने हेतु बुलाया जाना उचित नहीं था। अतः इससे व्यथित होकर, अपीलकर्ताओं ने दिनांक 03.04.2007 के आदेश द्वारा मजिस्ट्रेट द्वारा प्रारंभ की गई कार्यवाही को निरस्त करने हेतु एक याचिका दायर की।

4. उच्च न्यायालय ने, विवादित आदेश द्वारा, याचिका को यह कहते हुए निरस्त कर दिया कि प्रथम प्रतिवादी द्वारा मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर शिकायत में लगाए गए आरोपों की सत्यता "साक्ष्य का विषय है और इसे केवल तभी निर्धारित किया जा सकता है जब साक्ष्य प्रस्तुत किए जाएँ।"

5. श्री सोली जे. सोराबजी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, को सुना गया, जो आपराधिक अपील सं. 1347/2010 में अपीलकर्ताओं की ओर से तथा आपराधिक अपील सं. 1348/2010 में प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित हुए। सुश्री विभा दत्ता माखिजा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, आपराधिक अपील सं. 1347/2010 में प्रतिवादियों की ओर से तथा आपराधिक अपील सं. 1348/2010 में अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित हुईं। सुश्री एस. जननी, विद्वान अधिवक्ता, दोनों आपराधिक अपील सं. 1347/2010 एवं 1348/2010 में शिकायतकर्ता/प्रतिवादी(गण) की ओर से उपस्थित हुईं।

6. यद्यपि विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने मामले के गुण-दोष के आधार पर भी तर्क प्रस्तुत करने का प्रयास किया, तथापि हम इसे इस चरण पर आवश्यक नहीं मानते और न ही इस पर विचार करना उचित है। तथापि, यह तर्क कि मजिस्ट्रेट ने इस संबंध में कोई राय भी नहीं बनाई कि क्या शिकायत में लगाए गए आरोप, धारा 200 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अभिलेखित कथनों के साथ विचार करने पर, किसी अपराध का गठन करते हैं, विचारणीय है।

7. प्रश्न यह है कि मजिस्ट्रेट, शिकायत पर अपराध का संज्ञान लेते समय, अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के आधार के संबंध में अपने संतोष को किस प्रकार अभिव्यक्त करता है।

8. **<u>पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट</u>**1 में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 204 के अंतर्गत किसी आपराधिक वाद में अभियुक्त को समन करना एक गंभीर विषय है और आपराधिक विधि की प्रक्रिया को यांत्रिक ढंग से प्रारंभ नहीं किया जा सकता। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को समन करने का आदेश यह दर्शाना चाहिए कि उसने मामले के तथ्यों तथा प्रासंगिक विधि पर अपना मस्तिष्क लगाया है। उद्धृत करते हुए:

> **"28.** किसी आपराधिक मामले में अभियुक्त को समन करना एक गंभीर विषय है। आपराधिक विधि को सामान्य रूप से स्वतः प्रारंभ नहीं किया जा सकता। यह आवश्यक नहीं है कि शिकायतकर्ता केवल दो गवाह प्रस्तुत कर दे ताकि उसकी शिकायत में

लगाए गए आरोपों के समर्थन में आपराधिक विधि की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाए। मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को समन करने का आदेश यह दर्शाना चाहिए कि उसने मामले के तथ्यों तथा उस पर लागू विधि पर अपना मस्तिष्क लगाया है। उसे शिकायत में लगाए गए आरोपों की प्रकृति तथा उनके समर्थन में प्रस्तुत मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्यों का परीक्षण करना होता है और यह देखना होता है कि क्या वे साक्ष्य इस बात के लिए पर्याप्त हैं कि शिकायतकर्ता अभियुक्त के विरुद्ध आरोप सिद्ध कर सके। यह नहीं माना जा सकता कि अभियुक्त को समन करने से पूर्व प्रारंभिक साक्ष्य अभिलेखित करते समय मजिस्ट्रेट मात्र एक मूक दर्शक होता है। मजिस्ट्रेट को अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्यों का सावधानीपूर्वक परीक्षण करना होता है और वह सत्यता का पता लगाने के लिए शिकायतकर्ता तथा उसके गवाहों से स्वयं प्रश्न भी पूछ सकता है, ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि आरोप सत्य हैं या नहीं, और तत्पश्चात यह देखना होता है कि क्या सभी या किसी अभियुक्त द्वारा प्रथम दृष्टया कोई अपराध किया गया है।"

9. ऐसी गंभीर प्रक्रिया का सहारा लेते समय, इस न्यायालय ने निरंतर यह अभिनिर्धारित किया है कि मजिस्ट्रेट को अपराध किए जाने के आरोपों पर अपना मस्तिष्क अवश्य लगाना चाहिए। **दर्शन सिंह राम किशन बनाम महाराष्ट्र राज्य**2 में यह कहा गया कि संज्ञान लेने की प्रक्रिया में कोई औपचारिक कार्यवाही शामिल नहीं होती, बल्कि यह उस समय घटित होती है जब मजिस्ट्रेट आरोपों पर अपना मस्तिष्क लगाता है और उसके पश्चात अपराध का न्यायिक संज्ञान लेता है। उद्धृत करते हुए:

"**8.** दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 के अनुसार, एक मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान (a) शिकायत प्राप्त होने पर, या (b) पुलिस प्रतिवेदन पर, या (c) किसी पुलिस अधिकारी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त सूचना पर, अथवा यहाँ तक कि अपनी स्वयं की जानकारी या संदेह के आधार पर कि ऐसा अपराध किया गया है, ले सकता है। जैसा कि अनेक बार अभिनिर्धारित किया गया है, संज्ञान लेना किसी औपचारिक कार्यवाही या किसी प्रकार की कार्यवाही को शामिल नहीं करता, बल्कि यह उस समय घटित होता है जब मजिस्ट्रेट किसी संदिग्ध अपराध के किए जाने के संबंध में अपना मस्तिष्क लगाता है।

---

2 (1971) 2 एस.सी.सी. 654

अतः संज्ञान उस समय लिया जाता है जब मजिस्ट्रेट पहली बार किसी अपराध का न्यायिक संज्ञान ग्रहण करता है। यह स्थिति समान रहती है, चाहे मजिस्ट्रेट शिकायत पर, या पुलिस प्रतिवेदन पर, अथवा किसी पुलिस अधिकारी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति की सूचना पर अपराध का संज्ञान ले। इसलिए, जब मजिस्ट्रेट पुलिस प्रतिवेदन पर किसी अपराध का संज्ञान लेता है, तो प्रथम दृष्टया वह उस प्रतिवेदन में प्रकट किए गए अपराध या अपराधों का संज्ञान लेता है।"

10. प्रारंभिक निर्णयों में से एक, **<u>एम्परर बनाम सोरिन्द्र मोहन चक्रबर्ती3</u>** में, कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया कि "संज्ञान लेने में कोई औपचारिक कार्यवाही, या वास्तव में किसी भी प्रकार की कार्यवाही शामिल नहीं होती, बल्कि यह उस समय घटित होता है जब मजिस्ट्रेट, इस रूप में, किसी संदिग्ध अपराध के किए जाने पर अपना मस्तिष्क लगाता है।"

11. **<u>श्रीमती नागव्वा बनाम वीरन्ना शिवलिंगप्पा कोंजलगी एवं अन्य4</u>** में, इस न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि संज्ञान लेने तथा अभियुक्त को प्रक्रिया जारी करने की प्रक्रिया में, मजिस्ट्रेट को यह राय बनानी होती है कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है। उस चरण पर, मजिस्ट्रेट यह विचार करने के लिए भी सक्षम है कि क्या शिकायत के मुखपृष्ठ पर अथवा शिकायतकर्ता द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य में कोई अंतर्निहित असंभावनाएँ (inherent improbabilities) विद्यमान हैं। उद्धृत करते हुए:

"5. .... यह सत्य है कि यह निर्णय लेते समय कि क्या प्रक्रिया जारी की जानी चाहिए, मजिस्ट्रेट शिकायत के मुखपृष्ठ पर प्रकट होने वाली अथवा शिकायतकर्ता द्वारा आरोपों के समर्थन में प्रस्तुत साक्ष्यों में निहित अंतर्निहित असंभावनाओं पर विचार कर सकता है, किन्तु अभियुक्त के दोषसिद्ध होने की संभावना और उसके विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला स्थापित होने के बीच एक अत्यंत सूक्ष्म भेद रेखा होती है। मजिस्ट्रेट को इस विषय में निर्विवाद रूप से विवेकाधिकार प्रदान किया गया है और उस विवेकाधिकार का प्रयोग उसे न्यायिक रूप से करना होता है।

---

3 (1910) आई.एल.आर. खंड XXXVII, कलकत्ता 412

4 (1976) 3 एस.सी.सी. 736

एक बार जब मजिस्ट्रेट ने अपना विवेकाधिकार प्रयोग कर लिया, तो उच्च न्यायालय या यहाँ तक कि यह न्यायालय भी उसके स्थान पर अपना विवेकाधिकार प्रतिस्थापित नहीं कर सकता और न ही मामले के गुण-दोष के आधार पर यह जांच कर सकता है कि शिकायत में लगाए गए आरोप, यदि सिद्ध हो जाएँ, तो अंततः अभियुक्त की दोषसिद्धि होगी या नहीं ....”

12. **किशुन सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य5** में, इस न्यायालय ने पुनः यह प्रतिपादित किया कि जहाँ मजिस्ट्रेट द्वारा मस्तिष्क के प्रयोग के पश्चात यह पाया जाता है कि शिकायत में लगाए गए आरोप, यदि सिद्ध हो जाएँ, तो किसी अपराध का गठन करते हैं, वहाँ आगे अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए उस अपराध का संज्ञान लिया जाना चाहिए। उद्धृत करते हुए:

“7. ... यद्यपि ‘संज्ञान लेना’ अभिव्यक्ति की परिभाषा नहीं दी गई है, तथापि इस न्यायालय के अनेक निर्णयों द्वारा यह विधि-सम्मत रूप से स्थापित है कि जब मजिस्ट्रेट आरोपों का संज्ञान लेता है तथा शिकायत या पुलिस प्रतिवेदन या सूचना में लगाए गए आरोपों पर अपना मस्तिष्क लगाता है और इस संतोष पर पहुँचता है कि आरोप, यदि सिद्ध हो जाएँ, तो किसी अपराध का गठन करेंगे, तथा कथित अपराधी के विरुद्ध न्यायिक कार्यवाही प्रारंभ करने का निर्णय करता है, तब यह कहा जाता है कि उसने अपराध का संज्ञान ले लिया है। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि संज्ञान अपराध के संबंध में होता है, न कि अपराधी के संबंध में। मात्र मस्तिष्क का प्रयोग संज्ञान लेने के समान नहीं है, जब तक कि मजिस्ट्रेट ऐसा संहिता की धाराओं 200/204 के अंतर्गत आगे कार्यवाही करने के उद्देश्य से न करे।”

13. **पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य बनाम मोहम्मद खालिद एवं अन्य6** में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि संज्ञान लेने की शक्ति का प्रयोग करते समय, मजिस्ट्रेट को यह देखना होता है कि क्या न्यायिक कार्यवाही प्रारंभ करने के लिए कोई आधार विद्यमान है। पैरा 43 में निम्नलिखित कहा गया है:

---

5 (1993) 2 एस.सी.सी. 16

6 (1995) 1 एस.सी.सी. 684

"43. ... संहिता की धारा 190 मजिस्ट्रेटों द्वारा अपराधों के संज्ञान से संबंधित है। इस अभिव्यक्ति की संहिता में परिभाषा नहीं दी गई है। इसके व्यापक और शाब्दिक अर्थ में, इसका अर्थ किसी अपराध का संज्ञान लेना है। इसमें उस अपराध के संबंध में अपराधी के विरुद्ध न्यायिक कार्यवाही प्रारंभ करने का आशय भी सम्मिलित है या यह देखने के लिए कदम उठाना भी शामिल है कि क्या न्यायिक कार्यवाही प्रारंभ करने के लिए कोई आधार है अथवा अन्य प्रयोजनों के लिए। 'संज्ञान' शब्द उस बिंदु को इंगित करता है जब कोई मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश पहली बार किसी अपराध का न्यायिक संज्ञान लेता है। यह कार्यवाही प्रारंभ करने से पूर्णतः भिन्न है; बल्कि यह मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश द्वारा कार्यवाही प्रारंभ करने की पूर्व शर्त (condition precedent) है। संज्ञान मामलों का लिया जाता है, व्यक्तियों का नहीं।"

14. **कांति भद्र शाह एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य7** में, इस न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया है कि प्रक्रिया जारी करने के चरण पर विस्तृत आदेश लिखना पूर्णतः अनावश्यक है।

15. **उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाम मोहन मीकिन्स लिमिटेड एवं अन्य8** में, इस स्थिति को और स्पष्ट किया गया कि संज्ञान लेने के चरण पर कारणयुक्त (स्पीकिंग) आदेश पारित करना आवश्यक नहीं है।

16. **उप मुख्य नियंत्रक, आयात एवं निर्यात बनाम रोशन लाल अग्रवाल एवं अन्य9** में, इस न्यायालय ने उस स्थिति पर विचार किया जहाँ मजिस्ट्रेट द्वारा पारित विवादित आदेश इस प्रकार था: "संज्ञान लिया गया। मामला पंजीकृत किया जाए। अभियुक्त को समन जारी किया जाए।" यह अभिनिर्धारित किया गया कि "अभियुक्त को प्रक्रिया जारी करने के चरण पर, मजिस्ट्रेट के लिए कारण दर्ज करना आवश्यक नहीं है।" उक्त निर्णय में **कांति भद्र शाह** (उपर्युक्त) तथा **उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड** (उपर्युक्त) के निर्णयों का भी संदर्भ दिया गया।

17. **जगदीश राम बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य10** में,

---

7 (2000) 1 एस.सी.सी. 722

8 (2000) 3 एस.सी.सी. 745

9 (2003) 4 एस.सी.सी. 139

10 (2004) 4 एस.सी.सी. 432

विधि को पुनः प्रतिपादित किया गया कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रक्रिया जारी करने के चरण पर मजिस्ट्रेट को कारण अभिलिखित करने की आवश्यकता नहीं होती। तथापि, उसे इस बात से संतुष्ट होना आवश्यक है कि आगे कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है और यह संतोष इस बात से संबंधित नहीं है कि दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार है। उद्धृत करते हुए:

> **"10.** ... अपराध का संज्ञान लेना पूर्णतः मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र में आता है। इस चरण पर, मजिस्ट्रेट को यह संतुष्ट होना होता है कि आगे कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है, न कि यह कि दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार है। साक्ष्य दोषसिद्धि का समर्थन करने के लिए पर्याप्त हैं या नहीं, इसका निर्धारण केवल परीक्षण (ट्रायल) के दौरान किया जा सकता है, न कि जांच के चरण पर। अभियुक्त के विरुद्ध प्रक्रिया जारी करने के चरण पर, मजिस्ट्रेट को कारण अभिलिखित करने की आवश्यकता नहीं होती।"

18. **<u>एस. के. सिन्हा, मुख्य प्रवर्तन अधिकारी बनाम वीडियोकॉन इंटरनेशनल लिमिटेड एवं अन्य11</u>** में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि संज्ञान लेने का आपराधिक विधि में कोई गूढ़ या रहस्यमय महत्व नहीं है और इसका अभिप्राय यह है कि मस्तिष्क के प्रयोग के पश्चात किसी अपराध का न्यायिक संज्ञान लिया जाता है। उद्धृत करते हुए:

> **"19.** 'संज्ञान' अभिव्यक्ति की संहिता में परिभाषा नहीं दी गई है। किन्तु यह शब्द अनिश्चित अर्थ वाला है। आपराधिक विधि में इसका कोई गूढ़ या रहस्यमय महत्व नहीं है। इसका सामान्य अर्थ है 'अवगत होना' और जब इसे किसी न्यायालय या न्यायाधीश के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है, तो इसका आशय 'न्यायिक रूप से संज्ञान लेना' होता है। यह उस बिंदु को इंगित करता है जब कोई न्यायालय या मजिस्ट्रेट किसी अपराध का न्यायिक संज्ञान लेता है, ताकि उस अपराध, जिसे किसी व्यक्ति द्वारा किए जाने का कथन है, के संबंध में कार्यवाही प्रारंभ की जा सके।"

---

11 (2008) 2 एस.सी.सी. 492

20. "संज्ञान लेना किसी भी प्रकार की औपचारिक कार्यवाही को सम्मिलित नहीं करता। यह उस समय घटित होता है जब मजिस्ट्रेट किसी संदिग्ध अपराध के किए जाने पर अपना मस्तिष्क लगाता है। संज्ञान आपराधिक कार्यवाही के प्रारंभ होने से पूर्व लिया जाता है। अतः संज्ञान लेना एक आवश्यक शर्त (sine qua non) अथवा वैध परीक्षण के लिए पूर्वापेक्षा है। संज्ञान अपराध का लिया जाता है, न कि अपराधी का। यह कि मजिस्ट्रेट ने किसी अपराध का संज्ञान लिया है या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है और इस संबंध में कोई सार्वभौमिक नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता कि कब यह कहा जाए कि मजिस्ट्रेट ने संज्ञान ले लिया है।"

19. **<u>उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाम डॉ. भूपेन्द्र कुमार मोदी एवं अन्य12</u>** में, पैरा 23 में इस स्थिति पर निम्नलिखित रूप से विचार किया गया है:

"23. यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि प्रक्रिया जारी करने के चरण पर, मजिस्ट्रेट मुख्यतः शिकायत में किए गए आरोपों अथवा उनके समर्थन में प्रस्तुत साक्ष्यों से संबंधित होता है और उसे केवल प्रथम दृष्टया यह संतुष्ट होना होता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार हैं।"

20. **<u>भूषण कुमार एवं अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) एवं अन्य13</u>** में, संज्ञान लेने की प्रक्रिया में मस्तिष्क के प्रयोग की आवश्यकता को पुनः प्रतिपादित किया गया। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि समन इस उद्देश्य से जारी किया जाता है कि किसी व्यक्ति को विधि के कथित उल्लंघन के प्रत्युत्तर में मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने के उसके विधिक दायित्व की सूचना दी जा सके। यह भी कहा गया कि इस प्रकार जारी की गई प्रक्रिया में, मजिस्ट्रेट को स्पष्ट रूप से कारण अभिलिखित करने की आवश्यकता नहीं होती। पैरा 11 से 13 में इस संबंध में प्रासंगिक विचार-विमर्श निहित है, जो इस प्रकार है:

"11. *मुख्य प्रवर्तन अधिकारी बनाम वीडियोकॉन इंटरनेशनल लिमिटेड* (SCC पृ. 499, पैरा 19) में, इस न्यायालय ने 'संज्ञान' अभिव्यक्ति की व्याख्या करते हुए कहा कि "इसका मात्र अर्थ 'अवगत होना' है और जब इसे किसी न्यायालय या न्यायाधीश के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है, तो इसका अभिप्राय 'न्यायिक रूप से संज्ञान लेना' होता है। यह उस बिंदु को इंगित करता है जब कोई न्यायालय या मजिस्ट्रेट किसी अपराध का न्यायिक संज्ञान लेता है, ताकि उस अपराध, जिसे किसी व्यक्ति द्वारा किए जाने

का कथन है, के संबंध में कार्यवाही प्रारंभ की जा सके।" यह कार्यवाही प्रारंभ करने से पूर्णतः भिन्न है; बल्कि यह मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश द्वारा कार्यवाही प्रारंभ करने की पूर्व शर्त है। संज्ञान मामलों का लिया जाता है, व्यक्तियों का नहीं। संहिता की धारा 190 के अंतर्गत, शिकायत में किए गए कथनों पर न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग ही संज्ञान का गठन करता है। इस चरण पर, मजिस्ट्रेट को यह संतुष्ट होना होता है कि आगे कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है, न कि यह कि दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार है। साक्ष्य दोषसिद्धि के समर्थन के लिए पर्याप्त हैं या नहीं, इसका निर्धारण केवल परीक्षण के दौरान किया जा सकता है, न कि जांच के चरण पर। यदि आगे कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है, तो मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 204 के अंतर्गत प्रक्रिया जारी करने के लिए अधिकृत है।"

"12. 'समन' एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे न्यायालय द्वारा जारी किया जाता है, जिसके माध्यम से किसी व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा जाता है। इसका उपयोग किसी व्यक्ति को विधि के उल्लंघन के प्रत्युत्तर में मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने के उसके विधिक दायित्व की सूचना देने के उद्देश्य से किया जाता है। अर्थात्, समन उस व्यक्ति को, जिसके नाम यह जारी किया गया है, यह सूचित करता है कि उसके विरुद्ध विधिक कार्यवाही प्रारंभ की गई है तथा उसे किस तिथि और समय पर न्यायालय में उपस्थित होना है। जिस व्यक्ति को समन जारी किया गया है, वह निर्धारित तिथि एवं समय पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए विधिक रूप से बाध्य होता है। जानबूझकर अवहेलना करने पर भारतीय दंड संहिता की धारा 174 के अंतर्गत दंडनीय होता है। यह न्यायालय की अवमानना का भी आधार है।"

"13. संहिता की धारा 204 मजिस्ट्रेट को समन जारी करने के कारणों को स्पष्ट रूप से अभिलिखित करने का अनिवार्य निर्देश नहीं देती। यह स्पष्ट रूप से प्रावधान करती है कि यदि किसी अपराध का संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट की राय में आगे कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है, तो समन जारी किया जा सकता है। यह धारा मजिस्ट्रेट को यह राय बनाने का दायित्व देती है कि क्या समन जारी करने के लिए पर्याप्त आधार विद्यमान है,

---

12 (2009) 2 एस.सी.सी. 147

13 (2012) 5 एस.सी.सी. 424

किन्तु धारा में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि उस राय का स्पष्ट विवरण देना अनिवार्य है। अर्थात्, यह समन की वैधता के निर्धारण के लिए पूर्वापेक्षा नहीं है।"

21. निर्णयों का विस्तृत संदर्भ स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि शिकायत पर किसी अपराध का संज्ञान अभियुक्त के विरुद्ध प्रक्रिया जारी करने के उद्देश्य से लिया जाता है। चूँकि यह उन तथ्यों का न्यायिक संज्ञान लेने की प्रक्रिया है जो किसी अपराध का गठन करते हैं, अतः यह आवश्यक है कि इस बात पर मस्तिष्क का प्रयोग किया जाए कि क्या शिकायत में लगाए गए आरोप, अभिलेख पर दर्ज कथनों अथवा उस पर की गई जांच के साथ विचार करने पर, विधि का उल्लंघन सिद्ध करते हैं, जिससे किसी व्यक्ति को आपराधिक न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए बुलाया जा सके। यह कोई यांत्रिक प्रक्रिया या सामान्य कार्यवाही नहीं है। जैसा कि इस न्यायालय ने **पेप्प्सी फूड्स लिमिटेड** (उपर्युक्त) में कहा है, किसी व्यक्ति के विरुद्ध आपराधिक विधि की प्रक्रिया प्रारंभ करना एक गंभीर विषय है।

22. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 190(1)(b) के अंतर्गत, मजिस्ट्रेट के पास पुलिस प्रतिवेदन का लाभ होता है और धारा 190(1)(c) के अंतर्गत उसके पास अपराध किए जाने की सूचना या ज्ञान होता है। किन्तु धारा 190(1)(a) के अंतर्गत, उसके समक्ष केवल एक शिकायत होती है। अतः संहिता में यह निर्दिष्ट किया गया है कि ... "ऐसे तथ्यों की शिकायत जो किसी अपराध का गठन करते हों।" इसलिए, यदि शिकायत अपने प्रथम दृष्टया अवलोकन पर किसी भी अपराध के किए जाने का प्रकटीकरण नहीं करती है, तो मजिस्ट्रेट धारा 190(1)(a) के अंतर्गत संज्ञान नहीं लेगा। ऐसी स्थिति में शिकायत को सरलतापूर्वक निरस्त कर दिया जाना चाहिए।

23. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 190(1)(a) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट द्वारा उठाए गए कदम तथा उसके पश्चात धारा 204 के अंतर्गत की गई कार्यवाही से यह परिलक्षित होना चाहिए कि मजिस्ट्रेट ने तथ्यों एवं अभिलेख पर दर्ज कथनों पर अपना मस्तिष्क लगाया है और वह इस बात से संतुष्ट है कि मामले में आगे कार्यवाही करने हेतु पर्याप्त आधार है, जिससे उस व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध विधि के उल्लंघन का आरोप है, न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा जा सके। आगे कार्यवाही करने के आधार पर संतोष का अर्थ यह होगा कि शिकायत में आरोपित तथ्य किसी अपराध का गठन करते हैं तथा अभिलेख पर दर्ज कथनों के साथ विचार करने पर प्रथम दृष्टया अभियुक्त को न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी बनाते हैं। निस्संदेह, उस चरण पर कोई औपचारिक अथवा कारणयुक्त (स्पीकिंग) आदेश पारित करना आवश्यक नहीं है। दण्ड प्रक्रिया संहिता में धारा 203 के अंतर्गत, जब शिकायत निरस्त

की जाती है, तब कारणयुक्त आदेश पारित करने का प्रावधान है और उसमें भी कारण केवल संक्षेप में बताने होते हैं। अर्थात्, मजिस्ट्रेट को उसके समक्ष प्रस्तुत प्रत्येक शिकायत पर संज्ञान लेते समय डाकघर (पोस्ट ऑफिस) की भाँति कार्य नहीं करना चाहिए और न ही सामान्य रूप से प्रक्रिया जारी करनी चाहिए। मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में यह पर्याप्त संकेत होना चाहिए कि वह इस बात से संतुष्ट है कि शिकायत में लगाए गए आरोप किसी अपराध का गठन करते हैं तथा अभिलेख पर दर्ज कथनों और धारा 202 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत की गई जांच या अन्वेषण प्रतिवेदन (यदि कोई हो) के साथ विचार करने पर अभियुक्त आपराधिक न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी है और उसके विरुद्ध धारा 204 के अंतर्गत कार्यवाही प्रारंभ करने हेतु, उपस्थिति के लिए प्रक्रिया जारी करने का आधार विद्यमान है। मस्तिष्क के प्रयोग का सर्वोत्तम प्रदर्शन संतोष के प्रकटीकरण से होता है। यदि ऐसे किसी प्रकरण में, जहाँ मजिस्ट्रेट धारा 190/204 के अंतर्गत कार्यवाही करता है, इस प्रकार का कोई संकेत नहीं मिलता है, तो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक न्यायालय की शक्तियों के दुरुपयोग को रोकने के लिए बाध्य है। आपराधिक न्यायालय में अभियुक्त के रूप में उपस्थित होने के लिए बुलाया जाना एक गंभीर विषय है, जो व्यक्ति की गरिमा, आत्मसम्मान एवं समाज में उसकी छवि को प्रभावित करता है। अतः आपराधिक न्यायालय की प्रक्रिया को उत्पीड़न के साधन के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

24. मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश का अवलोकन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अपीलकर्ताओं के विरुद्ध संज्ञान लेने तथा प्रक्रिया जारी करने में माननीय मजिस्ट्रेट द्वारा मस्तिष्क के प्रयोग का कोई संकेत नहीं है। यह तर्क कि मस्तिष्क के प्रयोग का अनुमान लगाया जाना चाहिए, स्वीकार्य नहीं है। यह तर्क भी स्वीकार्य नहीं है कि मस्तिष्क के प्रयोग के बिना प्रक्रिया जारी नहीं की जाएगी। यद्यपि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 190/204 के चरण पर कोई औपचारिक, कारणयुक्त या विस्तृत आदेश आवश्यक नहीं है, तथापि यह आवश्यक है कि मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध के गठन करने वाले तथ्यों तथा धारा 200 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अभिलेखित कथनों पर मस्तिष्क के प्रयोग का पर्याप्त संकेत हो, ताकि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही की जा सके। निस्संदेह, उच्च न्यायालय का यह कहना सही है कि आरोपों की सत्यता साक्ष्य का विषय है। परंतु प्रश्न आरोपों की सत्यता का नहीं है, बल्कि यह है कि क्या प्रतिवादीगण आपराधिक न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी हैं या नहीं। इस संबंध में माननीय मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में कोई संकेत नहीं है। अतः हम न्यायिक

मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, श्रीनगर द्वारा दिनांक 03.04.2007 को पारित आदेश तथा उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित आदेश को निरस्त करते हैं। मामला पुनः विचारार्थ मजिस्ट्रेट को प्रत्यावर्तित किया जाता है तथा विधि के अनुसार, यदि आवश्यक हो, तो आगे की कार्यवाही की जाए।

25. उपर्युक्तानुसार अपीलें स्वीकार की जाती हैं।

कल्पना के. त्रिपाठी अपीलें स्वीकार की गईं

यह अनुवाद संजय नारायण, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|